More Ebooks: http://vinitaa.shah.googleplages.com
Edited by Foxit Reader
Copyright(C) by Foxit Software Company,2005-2006
For Evaluation Only.

Premchand

Shatranj Ke Khiladi

Chapter 1

DV

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, सभी विलासिता में डूबे हु थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-विहार में, सर्वत्र

विलासिता व्याप्त हो रही थी। कर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमें, इत्र मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लि पाली बदी जा रही है। कहीं चौरस बिछी हुई है। पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज ताश, गंजीफा, खेलने में बुद्धि तीव्र होती है, विचार शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें जोर के साथ पेश की जाती थीं। (इस सम्प्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी खाली नहीं है।) इसलि अगर मिर्जा सज्जाद अली और मीर रौशन अली अपना अधिकांश समय बुद्धि-तीव्र करने में व्यतीत करते थे तो किसी विचार शील पुरूष को क्या आपत्ति हो सकती थी ? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी। घर में बैठे चखोतियाँ करते। आखिर और करते ही क्या ? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछा कर बैठ जाते, मुहरे सज जाते और लड़ाई के दाँवपेच होने लगते थे। फिर खबर न होती थी कि कब दोपहर हुई कब तीसरा पहल,

कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता था

--'खाना तैयार है।'यहाँ से जवाब मिलता - ' चलो आते हैं, दस्तरख्वान बिछाओ।' यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे में ही खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्जा सज्जाद अली के घर में कोई बड़ा-बूढा न था, इसलि उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती

थीं ; मगर यह बात न थी कि मिर्जा के घर के और लोग उसके इस व्यवहार से खुश हों। घर वाली का तो कहना ही क्या, मुहल्लेवाले घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे 'बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है यहाँ तक कि मिर्जा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोज कर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोचती रहती थीं, तब तक उधर बाजी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिर्जा जी भीतर आते थे। हाँ नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं- क्या पान माँगे हैं ? कह दो आकर ले जायँ। खाने की भी फुर्सत नहीं है ? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायँ चाहे कुत्ते को खिलावें।' पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था जितना मीर साहब से। उन्होंने उसका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्जा जी अपनी सफाई देने के लि सारा इल्जाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

क दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंड़ी से कहा - 'जाकर मिर्जा साहब को बुला लो। किसी हकीम के यहाँ से दवा लायें। दौड़, जल्दी कर । लौंड़ी गयी तो मिर्जा ने कहा- 'चल' अभी आते हैं। बेगम साहबा का मिजाज गरम था । इतनी ताब कहाँ

कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया । लौंड़ी से कहा- 'जाकर कह' अभी चलि नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी। मिर्जा जी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे ; दो ही किश्तों में मीर साहब की मात हुई जाती थी, झँझला कर बोले- 'क्या`सा दम लबों पर है

?जरा सब्र नहीं होता ?'

मीर - अरे तो जाकर सुन ही आइ न। औरतें नाजुक-मिजाज होती ही हैं।

मिर्जा- जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किश्तों में आपको मात होती है।

मीर- जनाब, इस भरोसे में न रहिगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जा। पर जाइ,सुन आइ, क्यों ख्वामह-ख्वाह उनका दिल दुखाइगा ?

मिर्जा- इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर - मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइ।

मिर्जा-- अरे यार जाना, ही पड़ेगा हकीम के यहाँ । सिर-दर्द खाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर- कुछ भी हो ; उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्जा- अच्छा, क चाल और चल लूँ।

मीर- हरगिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ न लगाऊँगा मिर्जा साहब मजबूर होकर अन्दर गये तो बेगम साहबा ने त्योरियाँ बदल कर लेकिन कराहते हु, कहा- तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है ! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते ! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो !

मिर्जा- क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।

बेगम- क्या जैसे वह खुद निखट्टू है, वैसे ही सबको समझते हैं ? उनके भी बाल बच्चे हैं, या सबका सफाया कर डाला है !

मिर्जा- बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है तब मजबूर होकर मुझे खेलना पड़ता है।

बेगम-दुत्कार क्यों नहीं देते ?

मिर्जा- बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में, मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पड़ता है।

बेगम- तो मैं ही दुत्कार देती हूँ। नाराज हो जायेंगे, हो जाँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। हिरिया, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ ले जाइ।

मिर्जा- हाँ-हाँ, कहीं`सा गजब भी न करना ! जलील करना चाहती हो क्या ? ठहर हिरिया, कहाँ जाती है !

बेगम -जाने क्यों नहीं देते ? मेरे ही खून पि, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको तो जानूँ।

यह कह कर बेगम साहिबा झल्लायी हुई दीवानखाने की तरफ चली। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीवी की मिन्नतें करने लगे- 'खुदा के लि , तुम्हें हजरत हुसेन की कसम। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जा।' लेकिन बेगम ने क न मानी। दीवानखाने के द्वार तक चली गयीं। पर काक पर पुरूष के सामने जाते हु पाँव बँध ग। भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था ; मीर साहब ने दो-मुहरे इधर-उधर कर दि थे और अपनी सफाई बताने के लि बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँच कर बाजी उलट दी ; मुहरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर और किवाड़ अन्दर से बन्द करके कुंड़ी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ ग बेगम साहबा बिगड़ गयीं। घर की राह ली।

मिर्जा ने कहा- तुमने गजब किया ।

बेगम- अब, मीर साहब इधर आये तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ खुदा से लगाते

तो क्या गरीब हो जाते ? आप तो शतरंज खेलें और मैं यहीं चूल्हे चक्की की फिक्र में सिर खपाऊँ ।बोलो, जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है।

मिर्जा घर से निकले तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे, और सारा वृतान्त कहा। मीर साहब बोले- मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे तभी ताड़ गया। फौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इन्तजाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें

क्या सरोकार ?

मिर्जा - खैर, यह तो बताइ, अब कहाँ जमाव होगा ?

मीर - इसका क्या गम ? इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है ? बस यही जमे।

मिर्जा- लेकिन बेगम साहब को कैसे मनाऊँगा ? जब घर पर बैठा रहता था तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ

बैठक होगी तो शायद जिन्दा न छोड़ेंगी।

मीर- अजी बकने भी दीजि, दो-चार रोज में आप ही ठीक हो जायँगी।

हाँ, आप इतना कीजि कि आज से जरा तन जाइ !

मीर साहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलि वह उनके शतरंज प्रेम की कभी आलोचना न करतीं बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गम्भीर है। लेकिन जब दीवानखाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे तो उन्हें बडा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गयी । दिन भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में काना-फूसी होने लगी। अब तक दिन भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, इनसे कुछ मतलब न था। आठों पहर की धौंस हो गयी। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई लाने का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था । वे बेगम साहब ने जा-जाकर कहते - हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई ! दिन भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे

तो शाम ही कर दी। घड़ी आध घड़ी दिल-बहलाव के लि खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा बजा ही लावेंगे ; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई न कोई आफत जरूर आती है। यहाँ तक कि क के पीछे मुहल्ले के मुहल्ले तबाह हो जाते देखे गये हैं। सारे मुहल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं। अपने आका की बुराई सुन-सुन कर रंज होता है। मगर क्या करें ? इस पर बेगम

साहिबा कहती - मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, क्या किया जाय ?

मुहल्ले में भी दो-चार पुराने जमाने के लोग थे। वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनां करने लगे-अब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफिज। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली आती थी, और वह वेश्याओं में, भाँड़ों में और विलासता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेजी कम्पनी का

ण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीग कर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेसिडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ लोग विलासिता के नशे में चूर थे। किसी के कानों में जूँ न रेंगती थी।

खैर, मीर साहब के दीवानखाने में शतरंज होते की महीने गुजर गये । नये-नये नक्शे हल किये जाते, नये-नये बनाये जाते, नित नयी ब्यूह रचना होती ; कभी-कभी खेलते-खेलते भीड़ हो जाती।

तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती। पर शीघ्र ही दोनों में मेल हो जाता। कभी-कभी`सा भी होता कि बाजी उठा दी जाती, मिर्जा जी रूठ कर अपने घर में जा बैठते। पर रात भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानखाने में आ पहुँचते थे।

क दिन दोनों मित्र बैठे शतरंज की दलदल में गोते लगा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार

एक बादशाही फौज का अफसर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गये। यह क्या बला सिर पर आयी ? यह तलबी किस लिये हुई ? अब खैरियत नहीं नजर आती ! घर के दरवाजे बन्द कर लिये। नौकर से बोले - कह दो घर में नहीं हैं।

सवार- घर में नहीं, तो कहाँ हैं ?

नौकर- यह मैं नहीं जानता। क्या काम है ?

सवार- काम तुझे क्या बतालाऊँ ? हुजूर में तलबी है - शायद फौज के लि कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी ? मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे- दाल का भाव मालूम हो जायेगा।

नौकर- अच्छा तो जाइ, कह दिया जायेगा।

सवार- कहने की बात नहीं। कल मैं खुद आऊँगा। साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी । मिर्जा जी से बोले- कहि जनाब, अब क्या होगा ?

मिर्जा- बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर - कम्बख्त कल आने को कह गया है।

मिर्जा- आफत है, और क्या ! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा तो बे मौत मरे।

मीर- बस, यही क तदबीर है कि घर पर मिलें ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीरानें में नक्शा जमें। वहाँ किसे खबर होगी ? हजरत आकर लौट जायेंगे।

मिर्जा- वल्लाह, आपको खूब सूझी ! इसके सिवा और कोई तदबीर नहीं है।

इधर मीरसाहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं- तुमनें

खूब ध्रता बतायी। उसने जवाब दिया-`से गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूल कर भी घर न रहेंगे।

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अँधेरे घर से निकल खड़े होते । बगल में क छोटी-सी दरी दबाये, डिब्बे में गिलोरियाँ भरे, गोमती पार कर क पुरानी वीरान मस्जिद में चले जाते, जिसे शायद

नवाब आसफउद्दौला ने बनवाया था ।रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मस्जिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भर शतरंज खेलने बैठ जाते थे । फिर उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र न रहती थी।' किश्त', 'शह, आदि दो-क शब्दों के सिवा मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना काग्र न होता। दोपहर को जब भूख मालूम होती तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते और क चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम क्षेत्र में डट जाते। कभी कभी तो उन्हें भोजन का भी ख्याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फौजें लखनऊ की

तरफ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल बच्चों को ले-ले कर देहातों में
भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी । वे घर से आते तो गलियों में होकर । डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाजिम की निगाह न पड़ जाय, नहीं तो बेगार में पकड़े जायँ हजारों रूपये सालाना की जागीर मुफ्त में ही हजम करना चाहते थे।

क दिन दोनों मित्र मस्जिद के खंडहर में बैठे हु शतरंज खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हें किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हु दिखाई दिये। यह गोरों की फौज थी जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लि आ रही थी ।

मीर साहब- अंगरेजी फौज आ रही है खुदा खैर करे !

मिर्जा - आने दीजि, किश्त बचाइ। लो यह किश्त !

मीर - जरा देखना चाहि ; यहीं आड़ में खड़े हो जायँ।

मिर्जा - देख लीजिगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त !

मीर- तोप खाना भी है। कोई पाँच हजार आदमी होंगे, कैसे जवान हैं। लाल बंदरो से मुँह हैं। सूरत देखकर खौफ मालूम होता है।

मिर्जा-जनाब, हीले न कीजि। ये चकमें किसी और को दीजिगा - यह किश्त !

मीर- आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आयी हुई है, और आपको किश्त की सूझी है। कुछ इसकी खबर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे ?

मिर्जा- जब घर चलने का वक्त आयेगा तो देखी जागी- यह किश्त, बस अब की शह में मात है।

फौज निकल गयी। दस बजे का समय था। फिर बाजी बिछ गयी। मिर्जा बोले - आज खाने की कैसी ठहरेगी ?

मीर- अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको भूख ज्यादा मालूम होती है ?

मिर्जा- जी नहीं। शहर में जाने क्या हो रहा है ?

मीर- शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर

नवाब साहब भी`शगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज ग। अब की मिर्जा की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लि गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लि जा रही थी । शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। क बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह कायरपन था जिस पर बड़े से बड़े कायर आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था और लखनऊ`श की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्जा ने कहा- हुजूर नवाब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर - होगा, यह लीजि शह !

मिर्जा- जनाब, जरा ठहरि । इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर- रोया ही चाहें, यह`श वहाँ कहाँ नसीब होगा ? यह किश्त।

मिर्जा- किसी के दिन बराबर नहीं जाते । कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर- हाँ, सो तो है ही- यह लो, फिर किश्त ! बस अब की किश्त में मात है। बच नहीं सकते।

मिर्जा- खुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, गरीब वाजिदअली शाह !

मीर- पहले अपने बादशाह को तो बचाइ, फिर नवाब का मातम कीजिगा। यह किश्त और मात ! लाना हाथ !

बादशाह को लि हु सेना सामने से निकल गयी ।उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछी ली। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा- आइ नवाब के मातम में मरसिया कह डालें। लेकिन मिर्जा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी । वह हार का बदला चुकाने के लि अधीर हो ग थे।

शाम हो गयी। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने घोंसलों में चिपटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हु थे। मानों दोनों खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हो। मिर्जा जी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे ; इस चौथी बाजी का भी रंग अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़निश्चय कर सँभल कर खेलते थे लेकिन क न क चाल`सी बेढ़ब आ पड़ती थी जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के गजलें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानों कोई गुप्त धन पा गये हो। मिर्जा सुन-सुनकर झुझलाते और हार की झेंप मिटाने के लि उनकी दाद देते थे। ज्यों-ज्यों बाजी कमजोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे। 'जनाब' आप चाल न बदला कीजि। यह क्या कि चाल चले और फिर उसे बदल दिया जाय । जो कुछ चलना है क बार चल दीजि । यह आप मुहरे पर ही क्यों हाथ रखे रहते हैं। मुहरे छोड़ दीजि। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइ ही नहीं। आप क-क चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे क चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे उसकी मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली ? चुपके से मुहरा वहीं रख दीजि।

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले- मैंने चाल चली ही कब थी ?

मिर्जा- आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजि-उसी घर में ।

मीर- उसमें क्यों रखूँ ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था ?

मिर्जा- मुहरा आप कयामत तक न छोड़े, तो क्या चाल ही न होगी ? फरजी पिटते देखा तो धाँधली करने लगे।

मीर- धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तकदीर से होती है। धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा- तो इस बाजी में आपकी मात हो गयी।

मीर - मुझे क्यों मात होने लगी ?

मिर्जा- तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजि, जहाँ पहले रखा था।

मीर- वहाँ क्यों रखूँ ? नहीं रखता।

मिर्जा- क्यों न रखिगा ? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता, न वह । अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्जा बोले- किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला कि, आप शतरंज क्या खेलिगा ? रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर- क्या ! घास आपके अब्बाजन छीलते होंगे। यहाँ तो पीढियों से शतरंज खेलते चले आते हैं ?

मिर्जा- अजी जाइ भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुजर गयी। आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं।

मीर- क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह पर कालिख लगाते हो- वे ही बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आये हैं।

मिर्जा- अरे चल चरकटे, बहुत बढ़कर बातें न कर !

मीर- जबान सँभालि, वर्ना बुरा होगा। मैं`सी बातें सुनने का आदी नहीं। यहाँ तो किसी ने

आँखे दिखायीं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला ?

मिर्जा- आप मेरा हौसला देखना चाहते है, तो फिर आइ, आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर।

मीर- तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है ?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था। सभी तलवार, पेशकब्ज, कटार वगैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था। बादशाह के लि क्यों मरें ? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाजें आयीं। दोनों जख्मी होकर गिरे, दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दीं। आपने बादशाह के लि उनकी आँखों से क बूँद आँसू न निकला, उन्होंने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दि।

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासन पर बैठे मानों इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई, मेहराबें गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरिते मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।